यह समयसार, ३२० गाथा, जयसेनाचार्य की टीका। क्या चलता है, देखो! कि यह आत्मा वस्तु है जो त्रिकाल ध्रुव है, उसे तो शास्त्र में निष्क्रिय कहा है। निष्क्रिय अर्थात् धर्म की जो पर्याय, बन्ध-मोक्ष की पर्याय जो है, उससे रहित कहने में आया है। समझ में आया?

तो कहते हैं कि जो त्रिकाली ज्ञायकभाव जो सम्यग्दर्शन का ध्येय.. समझ में आया? वह तो निष्क्रिय है। उसमें मोक्षमार्ग की पर्याय और बन्धमार्ग की अवस्था-जो पर्याय, वह सक्रियपना है-निर्मल अवस्था जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह भी सक्रिय परिणाम है। उस त्रिकाली वस्तु में वह है नहीं; इस कारण ध्यान जो है-उसका जो ध्यान करना है, वह ध्यान है, वह तो पर्याय है। समझ में आया?

इसलिए ऐसा जाना जाता है कि शुद्धपारिणामिकभाव ध्येयरूप है,.. त्रिकाल ध्रुव.. बहुत समेट करके संक्षेप में लाये। जिसको धर्म करना है तो धर्म की पर्याय में ध्येय / लक्ष्य करने योग्य तो त्रिकाली चीज़ है। क्योंकि ध्यानरूप, वह ध्येय नहीं है। त्रिकाली वस्तु है, वह मोक्षमार्गरूप नहीं है। समझ में आया? **ध्यानरूप नहीं है।** कौन ध्यानरूप नहीं? त्रिकाल वस्तु अविनाशी ध्रुव। ध्रुव पर से तो रहित राग से तो रहित परन्तु अपनी निर्मल पर्याय से भी रहित.. समझ में आया? वह ध्येय है; ध्यानरूप नहीं। वह पारिणामिकभाव ध्यानरूप नहीं। **किसलिए? क्योंकि ध्यान विनश्वर है...** ध्यान जो आत्मा का शुद्धस्वरूप के प्रति एकाग्रता, वह तो नाशवान है। आहाहा! समझ में आया? **(और शुद्धपारिणामिक-भाव तो अविनाशी है)।** त्रिकाल वस्तु ध्रुवस्वरूप सत्-उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् में उत्पाद-व्यय परिणाम है, वह तो नाशवान है - ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया? वह तो पर्याय / वर्तमान अवस्था का लक्ष्य करनेवाला नय, पर्यायार्थिकनय का विषय है और पारिणामिक त्रिकाल जो भाव है, वह द्रव्यार्थिकनय-द्रव्य त्रिकाली, उसका वह विषय है। समझ में आया?

तो कहते हैं **श्री योगीन्द्रदेव ने भी कहा है..** जयसेनाचार्य टीका करते हुए आधार देते हैं कि मैं कहता हूँ इतना ही नहीं, परन्तु योगीन्द्रदेव, परमात्मप्रकाश के रचनेवाले महामुनि सन्त थे.. समझ में आया? उन्होंने भी कहा है। क्या कहा है? देखो! परमात्मप्रकाश गाथा ६८। ६ और ८।

'ण वि उपज्जइ ण वि मरइ बन्धु ण मोक्खु करेइ।
जिउ परमथे जोइया जिणवर एउ भणेइ॥'

भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा जिनवरदेव ने ऐसा कहा है कि **हे योगी!..** अर्थात् आत्मा के आनन्दस्वरूप में जुड़ान करनेवाले, एकाग्रता करनेवाले हे धर्मात्मा! ऐसा सम्बोधन करके कहा है। हे धर्मी! **परमार्थ से जीव, उपजता भी नहीं है,...** आहाहा! सिद्धपर्यायरूप से उपजना, वह भी नहीं। इस जन्म में-गति में उपजना, वह भी जीव में नहीं है। समझ में आया? **मरता भी नहीं है..** ध्रुव चीज़ उत्पन्न भी नहीं होती और विनाश भी नहीं होता। बराबर है? **और बन्ध-मोक्ष नहीं करता..** भगवान आत्मा जो ध्रुव चैतन्यवस्तु, जो द्रव्यार्थिक-शुद्धद्रव्यार्थिक, द्रव्य जिसका प्रयोजन है—ऐसे नय की विषय जो वस्तु है, वह बन्ध-मोक्ष नहीं करती। बन्ध के परिणाम को भी नहीं करती और मोक्ष के परिणाम को-मोक्ष को ही नहीं करती। गजब! समझ में आया? **ऐसा श्री जिनवर कहते हैं।** अब ६८वीं गाथा लेते हैं। देखो, उसमें है न, परमात्मप्रकाश।

उसमें कहा है, तब कोई बन्ध-मोक्ष न करे तो मोक्ष करने का पुरुषार्थ नहीं है न आत्मा में? यह तो यहाँ इनकार किया है। ध्रुव में तो है नहीं। समझ में आया?

भावार्थ — परमात्मप्रकाश में है। ***यद्यपि यह आत्मा शुद्धात्मानुभूति का अभाव होने पर..*** देखो, रतनचन्दजी आदि कहते हैं, देखो! शास्त्र में तो पंगु कहा है - कर्म से सब होता है, आत्मा से कुछ होता नहीं - ऐसा कहते हैं उसमें। परन्तु वह तो कर्म से होता है, यह कैसी दृष्टि से? जिसका स्वभाव शुद्ध आनन्द है - ऐसी दृष्टि हो गयी, आनन्द का अनुभव हुआ, अब थोड़ा रागादि बाकी है, वह कर्म से उत्पन्न होता है और कर्म से नाश होता है - ऐसी बात कही है। समझ में आया? फिर से-जो शुद्ध आत्मा है, परिपूर्ण ध्रुव है, उसका अनुभव हुआ है कि मैं तो आनन्द और शुद्ध ध्रुव चैतन्य हूँ - ऐसे अनुभव की

पर्याय में.. अब बाकी जो कुछ जन्म-मरण रहा, वह आत्मा का नहीं, वह कर्म के कारण से है, अपने स्वभाव से नहीं - ऐसा कहने में आता है। तो वे लगाते हैं कि देखो! कर्म से होता है, तब कहते हैं कि ***यद्यपि यह आत्मा शुद्धात्मानुभूति का अभाव होने पर..*** भगवान आत्मा आनन्द है - ऐसा अनुभव न होने पर ***शुभ-अशुभ उपयोग में परिणमन करके..*** शुभ और अशुभ परिणमन अज्ञानी करता है। समझ में आया? भान हुआ चैतन्यमूर्ति आत्मा का तो ऐसे भान में धर्मी को शुभाशुभ परिणमन अपनी पर्याय में है ही नहीं। वह है, वह सब कर्म का कार्य है और छूटे तो कर्म से छूटे-ऐसा न्याय / दलील ले लिया है। समझ में आया?।

तो कहते हैं ***शुभ-अशुभ उपयोग से परिणमन करके..*** देखो! करता है जीव, पर्याय में। शुद्धात्मानुभूति के अभाव से, भगवान पवित्र आनन्द का नाथ शुद्ध आनन्द का सागर है - ऐसा जिसको आनन्द का-अनुभव का स्वाद आया नहीं। समझ में आया? वह आनन्द के स्वाद के अभाव में ***जीवन-मरण शुभ-अशुभ कर्म बन्ध को करता है..*** पर्याय में-अवस्था में उस शुभ-अशुभ परिणाम से परिणमन करते हुए शुभ करे। यदि शुभ हो तो स्वर्गादि में जाये, अशुभ हो तो नरकादि में जाये। यह पर्याय में सब होता है, परन्तु किसको? शुद्धात्मा की अनुभूति नहीं है इस कारण (अज्ञानी जीव को)।

यह शुद्ध भगवान आत्मा परमानन्दस्वरूप के अनुभव के अभाव में। यदि अनुभव हो, तब तो शुभाशुभ परिणमन उसको होता ही नहीं। समझ में आया? आहाहा! तो कहते हैं कि ***शुभअशुभ उपयोग से परिणमन करके जीवन-मरण, शुभ-अशुभ कर्मबन्ध को करता है और शुद्धात्मानुभूति के प्रगट होने पर...*** यह सब पर्याय की बात ली है। जब शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा का अनुभव/शुद्धात्मानुभूति / निर्मल वीतरागी पर्याय / धार्मिक अवस्था प्रगट हुई। ***शुद्धोपयोग से परिणत होकर...*** पहले शुभ-अशुभ में परिणत कहा था - मिथ्यात्व में। समझ में आया? और सम्यग्दर्शन के भान में ***शुद्धोपयोग से परिणत होकर मोक्ष को करता है।***

मुमुक्षु : चौथे गुणस्थान की बात है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ से शुरुआत होती है। चौथे से सिद्ध तक। चौदहवें तक। समझ में आया? सिद्ध तो मोक्ष है। समझ में आया? तो शुद्ध उपयोग से परिणत होकर...

टीका है। जैसे अज्ञानी अपने आनन्दस्वभाव का अनुभव न होने पर, जो उसमें नहीं है - ऐसे शुभाशुभ विकल्प को करता है, उसे कर्मबन्धन होता है। उससे उसको जन्म-मरण होता है, उपजना-मरना होता है। समझ में आया? अध्यात्म की बात सूक्ष्म है।

जब आत्मा अपने निजघर में आता है, शुद्ध चैतन्यस्वरूप मैं हूँ, आनन्द हूँ-ऐसी आत्मा की अनुभूति-सम्यग्दर्शन हुआ... समझ में आया? ***शुद्धात्मानुभूति के प्रगट होने पर, शुद्धोपयोग से परिणत होकर...*** शुद्धोपयोगरूपी दशा पर्याय में प्रगट करके अवस्था में मोक्ष का करता है। ***तो भी शुद्ध पारिणामिक परमभाव ग्राहक द्रव्यार्थिकनय कर न बन्ध का कर्ता है, न मोक्ष का कर्ता है।*** अब गाथा का अर्थ लेते हैं। समझ में आया?

शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहक दृष्टिकर.. -उसका अर्थ : यह शुद्धपारिणामिकभाव दृष्टि में आया, उसको उपादेय जाना। समझ में आया? वह जीव न बन्ध का करता है, न मोक्ष का करता है। द्रव्यदृष्टि में जब दृष्टि हुई... समझ में आया? आगे कहेंगे अन्त में कि भाई! आत्मा ऐसा उपादेय है। परन्तु उपादेय का अर्थ क्या?

मुमुक्षु : उपादेय का अर्थ तो बराबर बताओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कि अन्तर निर्विकल्प अनुभव में आत्मा का आदर उपयोग हो, तब उपादेय कहने में आता है।

मुमुक्षु : ठीक से समझ में नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर से लेते हैं। अन्त में है देखो, ***अपना शुद्धात्मा वीतराग निर्विकल्प समाधि में लीन पुरुषों को उपादेय है।*** वैसे उपादेय-उपादेय माने - ऐसा नहीं, वह तो विकल्प और धारणा हुई। उसको उपादेय का भान है नहीं। समझ में आया?

इसी प्रकार समयसार छठवीं गाथा में कहा है कि आत्मा प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं है। शिष्य ने प्रश्न किया- भगवान! आप शुद्धात्मा किसे कहते हो कि जिसे हमें जानना चाहिए? तो भगवान-कुन्दकुन्दाचार्य उत्तर देते हैं कि भैया! परलक्ष्य को छोड़कर भगवान शुद्धात्मा को ध्येय बनाकर पर्याय में उसका सेवन करते हैं, वे शुद्धता प्रगट करते हैं और शुद्धता द्वारा यह द्रव्य शुद्ध है - ऐसा उसकी प्रतीति में आता है।

फिर, ऐसे शुद्ध है... शुद्ध है... ऐसा नहीं। यह तो अभी तो निकल गयी न बात

बाहर। जरा, सोगानी का पुस्तक बाहर निकल गयी है तो अब बहुत से बातें करने लगे हैं। समझ में आया? परन्तु उसका अर्थ ऐसा है। सूक्ष्म बात है, भगवान।

मुमुक्षु : अर्थ में कुछ अन्तर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, क्या अन्तर? किसमें? अर्थ में अन्तर है। अर्थ करने में अन्तर है। आत्मा... सुनो! छठवीं गाथा में ऐसा कहा, जो मूल गाथा है। समझ में आया? छठी का लेख, छठी का लेख कहते हैं न यह! ऐसी गाथा भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं कि प्रभु आत्मा में प्रमत्तपना भी नहीं और अप्रमत्त पर्याय भी नहीं, वह तो ज्ञायक शुद्ध है। किसको?

मुमुक्षु : सबको।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं; ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : त्रिकाल तो सबको है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं.. नहीं.. नहीं; वह शुद्ध है, इसका अनुभव हुआ, उसको शुद्ध है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ख्याल में आ गया पश्चात्....

पूज्य गुरुदेवश्री : ख्याल में आया ही नहीं है। ख्याल में आया क्या? वेदन बिना ख्याल में कहाँ से आया? समझो जरा न्याय! परमात्मप्रकाश में गाथा-गाथा में ऐसा लिया है।

मुमुक्षु : त्रिकाल कहते हैं फिर कहाँ फ्रिक है?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं... नहीं... नहीं; त्रिकाल दृष्टि में-स्वीकार में आये बिना त्रिकाल है - ऐसा निर्णय कहाँ से किया उसने?

मुमुक्षु : सुन करके।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुन करके क्या हो गया? दृष्टि में तो आया नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : आपने कहा हमने मान लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री: ऐसे कहा, वह माना ही नहीं उसने। माना तो उसे तब कहते हैं, (जब अनुभव हो)। समझ में आया?

मुमुक्षु : इसमें नया तो कुछ आया नहीं - ऐसा का ऐसा कि इसमें नया बहुत होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : नया तो अन्दर अनुभव करके शुद्ध है - ऐसा आया है। समझ में आया? ऐसे बातें करे, उसको नहीं। सुनो, बराबर! ऐ.. स्वरूपचन्दजी!

जिसको अन्तर में शुद्धचैतन्यध्रुव की अन्तर में पवित्रता प्रगट हुई है, शुद्धता प्रगट हुई है, उसके द्वारा यह द्रव्य शुद्ध है - ऐसा मानने में आता है। दृष्टि में आया नहीं, लक्ष्य में आया नहीं, फिर यह शुद्ध है-कहाँ से माना तूने-ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : आपने कहा शुद्ध है, और हमने मान लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! भगवान कहे तो भी क्या हुआ? इसका भगवान जगे बिना माना कहाँ से? ऐ... धन्नालालजी! यह तत्त्वार्थश्रद्धान कहते हैं न? तत्त्वार्थश्रद्धान। पण्डितजी! यह तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन है या नहीं मोक्षमार्ग में? वह व्यवहार है या निश्चय है?

मुमुक्षु : निश्चय।

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय है? तो यहाँ तो यह कहते हैं, तत्त्वार्थश्रद्धान को बहुत जगह तो व्यवहार कहते हैं। नहीं, तत्त्वार्थश्रद्धान ज्ञानप्रधान से कथन है, वस्तु-ध्रुव में जहाँ दृष्टि पड़ी और शुद्धता का अनुभव हुआ तो उसके ज्ञान में पर्याय संवर-निर्जरा, अशुद्धता आदि पर्याय उसमें नहीं है—ऐसा ज्ञान साथ में आ गया, उसका नाम तत्त्वार्थश्रद्धान जीवरूप कहने में आता है, भाई! उसे जीवरूप कहा है न? मोक्षमार्ग में गाथा रखी है। मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में, पुरुषार्थसिद्धियुपाय की २२ वीं गाथा। 'आत्मरूपं' (सम्यग्दर्शन) आत्मरूपम् है। समझ में आया? है न, मोक्षमार्गप्रकाशक, कहाँ है? उन्होंने आधार तो इसका दिया है न? मूल में से निकालते हैं न? २२ गाथा है, २२।

देखो! (पुरुषार्थसिद्धियुपाय, २२ गाथा!) देखो, उसमें उद्धरण दिया है टोडरमलजी ने।

जीवाजीवादीनां तत्त्वार्थानां सदैव कर्त्तव्यम्।
श्रद्धानं विपरीताभिनिवेश विविक्तमात्मरूपं तत्॥२२॥

आत्मरूपं है, देखो, आहाहा!

मुमुक्षु : द्रव्य तो कुछ करता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय से कहा न? पर्याय से द्रव्य पर दृष्टि करने से पर्याय में आयी न, आत्मदशा?

मुमुक्षु : वह है, हमें क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : है, ऐसा नहीं। ऐ... सेठ! इसके लिये तो यह लिया है 'आत्मरूपं तत्' तीनों में लिया है, हों! सम्यग्दर्शन आत्मरूप, सम्यग्ज्ञान आत्मरूप, सम्यक्चारित्र आत्मरूप, तीनों आत्मरूप हैं। २२, ३५ और ३९ तीन गाथायें हैं। पुरुषार्थसिद्ध्युपाय (में) अमृतचन्द्राचार्य (कृत गाथायें हैं)। तत्त्वार्थश्रद्धान, वह आत्मरूप है। यहाँ कहते हैं ध्रुव का अनुभव होना, वह आत्मरूप दशा है। यह तत्त्वार्थश्रद्धान, आत्मरूप दशा है – दोनों में अन्तर नहीं है। जहाँ दृष्टि प्रधान कथन में ध्रुव, वह ध्येय है। सम्यग्दर्शन कहाँ से लिया है! और ज्ञानप्रधान कथन में ध्रुव का जहाँ ज्ञान और जहाँ श्रद्धा हुई तो वहाँ पर्याय भी उसमें नहीं है ऐसा ज्ञान भी साथ में आया है। तो उसमें सात तत्त्व की श्रद्धा हुई – ऐसा कहते हैं। विकल्पवाली नहीं। आहाहा! समझ में आया?

अन्वयार्थ – जीव-अजीवादि तत्त्वार्थों का विपरीत अभिनिवेश (आग्रह) रहित अर्थात् अन्य को अन्यरूप समझनेरूप जो मिथ्याज्ञान है, उससे रहित श्रद्धान् अर्थात् दृढ़ विश्वास निरन्तर ही करना चाहिए। कारण कि वह श्रद्धान ही आत्मा का स्वरूप है। पर्यायरूप की अपेक्षा से, हों! इस ध्रुवरूप की अपेक्षा से नहीं।

मुमुक्षु : अभी तक तो न कर्ता, न कर्ता आया था और यह तो निरन्तर प्रत्येक समय कर्ता..

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ; पर्याय कर्ता। पर्याय, ध्येय के लक्ष्य से कर्ता – ऐसा कहते हैं। ध्येय में कर्तव्य नहीं, परन्तु पर्याय में कर्तव्य, ध्येय का लक्ष्य करना, यह पर्याय में कर्तव्य आता है। आहाहा! शोभालालजी! थोड़ा सूक्ष्म है परन्तु अब समझना पड़ेगा। उल्टा देते हैं न? उल्टा पड़ेगा। उस पैसा-वैसा में कुछ धूल भी नहीं है। धूल भी नहीं अच्छा। नहीं.. नहीं.. नहीं, यह लोकोत्तर पुण्य सम्यग्दर्शन की भूमिका में जो शुभभाव हो, उससे पुण्य बँधता है, वह तीर्थंकर होता है, बलदेव होता है। समझ में आया? इन्द्र होता है, वह

पुण्य, पुण्य को व्यवहार से कहने में आता है, यह तो सब पुण्य भी ठिकाने बिना के हैं तुम्हारे। समझ में आया?

यहाँ तो इतना कहना है आत्मरूपं तत् - यहाँ कहते हैं आत्मा में वह सम्यग्दर्शन और मोक्षमार्ग का आत्मा कर्ता नहीं है। यहाँ कहते हैं उसका सदैव कर्तव्य है, यह अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं। उसका अर्थ कि भगवान आत्मा ध्रुव तो ध्रुव ही है, उसमें एकाग्रता करना, वह कर्तव्य है, जीव की पर्याय में कर्तव्य है, ध्रुव में नहीं। समझ में आया? ये तीनों बोल हैं, हों! वहाँ २२ में आया और ३५ में, तथा ३९। ३५ में ज्ञान की बात है। आत्मरूपं लिया है, ३५ देखो, ३५ वहाँ यह शब्द है।

कर्त्तव्योऽध्यवसायः सदनेकान्तात्मकेषु तत्त्वेषु।
संशयविपर्य्ययानध्यवसायविविक्तमात्मरूपं तत्॥३५॥

अनेकान्त हुआ। द्रव्य में कर्तव्य नहीं, पर्याय में कर्तव्य है। आहाहा! समझ में आया? वह यहाँ कहेंगे, देखो! फिर ज्ञान का लिया। ३९ में चारित्र की व्याख्या है, देखो!

चारित्रं भवति यतः समस्तसावद्ययोगपरिहरणात्।
सकलकषायविमुक्तं विशदमुदासीनमात्मरूपं तत्॥३९॥

कषाय का अंश भी छूट गया। निर्मल, विशद अर्थात् निर्मल सम्पूर्ण कषायरहित, सम्पूर्ण कषायरहित कहो या चारित्र कहो। यहाँ बारहवें (गुणस्थान की) बात नहीं है। यहाँ सम्पूर्ण कषायरहित का अर्थ चारित्र में कषायरहित, ऐसा। कषाय का अंश दूर रह गया। समझ में आया? शास्त्र के अर्थ को भी सही समझने की ताकत नहीं, वह आत्मा को सुलटा क्या कर सकेगा? समझ में आया?

देखो! निर्मल, परपदार्थों से विरक्ततारूप आत्मरूपम् होता है, देखो! यहाँ इन्कार करते हैं।

मुमुक्षु : परन्तु हमारा त्रिकाल आत्मा आपने कहा वैसा हो, फिर हमें फिक्र किसकी?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु त्रिकाल दृष्टि में आवे तो त्रिकाल है - ऐसा यहाँ कहते हैं। यह यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया? क्या कहा देखो? तो भी शुद्ध का ग्राहक न मोक्ष का करता है, देखो! ऐसा कथन सुनकर शिष्य ने प्रश्न किया—महाराज! आपने तो बन्ध

और मोक्ष, आत्मा करता ही नहीं है, बहुत गजब बात की है। शिष्य प्रश्न करता है, प्रभु! शुद्ध द्रव्यार्थिकनयरूप स्वरूप शुद्ध निश्चयनयकर मोक्ष का भी करता नहीं है तो ऐसा समझना चाहिए कि शुद्धनयकर मोक्ष भी नहीं है? मोक्ष भी नहीं है – ऐसा समझना चाहिए, मुझे ऐसा समझना न?

मुमुक्षु : ऐसे ही व्यवहार से मोक्ष है न...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो मोक्षपर्याय व्यवहार है। पर्याय व्यवहार है, मोक्ष, मोक्ष का मार्ग वह भी व्यवहार है और बन्ध का मार्ग भी व्यवहार है, वह तो पर्याय है, वह तो व्यवहार है। पर्याय व्यवहार है, त्रिकाली द्रव्य वह निश्चय है। भलीभाँति मोक्षमार्ग साधना वह व्यवहार है। चिट्ठी में आता है–मोक्षमार्ग साधना वही व्यवहार है, निश्चयमोक्षमार्ग साधना वह व्यवहार है, क्योंकि वह पर्याय है। आहा! समझ में आया?

त्रिकाली भगवान आत्मा में तो आप कहते हो (वह) बन्ध और मोक्षरहित है तो हमें तो ऐसा समझना न कि शुद्धनयकर मोक्ष ही नहीं है? और यदि मोक्ष नहीं है तो मोक्ष के लिये यत्न करना वृथा है। शिष्य का प्रश्न है। शुद्धनयकर तो मोक्ष ही नहीं? तो मोक्ष का प्रयत्न करना वह वृथा आ गया।

उसका उत्तर कहते हैं—मोक्ष है, वह बन्धपूर्वक है। सुनो! भगवान आत्मा में मुक्ति की जो पर्याय होती है, पहले राग की पर्याय थी बन्धपूर्वक; बन्ध का व्यय होकर मुक्त होता है। जिसको बन्ध हो, उसकी मुक्ति पर्याय में होती है; द्रव्य में तो बन्ध भी नहीं और द्रव्य में तो मुक्ति भी नहीं। बात पर्याय की है, हों! मुक्ति–शक्तिरूप मुक्ति तो त्रिकाल है। मोक्ष है, वह बन्धपूर्वक है; बन्ध है, वह शुद्धनिश्चयनयकर होता ही नहीं। राग, शुद्धनिश्चयनयकर यदि बन्ध हो तो कभी छूटे नहीं। आहाहा!

त्रिकाल कहो, शुद्ध कहो परन्तु ऐसी दृष्टि में आया, तब उसको बन्ध नहीं होता – ऐसा कहने में आता है। बापू! कठिन बात है। ए..ई.. पदमचन्दजी!

मुमुक्षु : आपका प्रवचन सुनने से हमको तो ध्रुव का–स्वभाव का आनन्द आ जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आया, परन्तु कहाँ से आया? सुनने से? आहाहा! भाई! यहाँ कहेंगे देखो!

इस कारण बन्ध के अभावरूप मोक्ष है, वह भी शुद्धनिश्चयनयकर नहीं है, यह तो हम भी कहते हैं कि बन्ध है, मोक्ष है, वह बन्धपूर्वक होता है तो पर्याय में बन्ध हो उसका अभाव होकर मोक्ष होता है परन्तु द्रव्य में तो बन्ध मोक्ष है ही नहीं। पर्याय में बन्ध है तो अभाव होकर मोक्ष होता है। यदि निश्चयनय से बन्ध होता हो तो हमेशा बन्ध ही रहता; कभी बन्ध का अभाव नहीं होता। यह योगीन्द्रदेव की टीका है।

इसके बारे में दृष्टान्त कहते हैं। कोई एक पुरुष साँकल से बँध रहा है, कोई एक पुरुष साँकल, साँकल.. साँकल कहते हैं न? लोहे की। और कोई एक पुरुष बंधरहित है। उसमें से जो पहिले बँधा था, उसको तो मुक्त हुआ, छूटा - ऐसा कहना तो ठीक मालूम पड़ता है। दूसरा जो बँधा ही नहीं, उसको 'आप छूट गये' ऐसा कहा गया तो क्रोध करता है। आप जेल में से कल छूट गये न? परन्तु जेल में था कब कि छूटा? हमको जेल में डाला है - ऐसा तुम्हें पहले कहना है। समझ में आया? दूसरा जो बँधा ही नहीं, उसको 'आप छूट गये' - ऐसा कहा जाये तो क्रोध करता है। मैं कब बँधा था तो मुझे छूटा कहते हो? बँधा हो, वह छूटे; इसलिए बँधे को तो मोक्ष कहना ठीक है परन्तु बँधा ही नहीं, उसे छूटा कैसे कहना? इसी प्रकार शुद्धनिश्चयनयकर जीव बँधा हुआ नहीं। भगवान ध्रुवस्वरूप, वह पर्याय में बँधा है नहीं; ध्रुव त्रिकाल भगवान पड़ा है, वह निश्चय से बँधा नहीं है। (इस कारण मुक्त कहना ठीक नहीं।)

भगवान सिद्ध समान ध्रुव जो आत्मा वह वीतराग निर्विकल्प समाधि में लीन पुरुषों को उपादेय है। क्या कहते हैं? मूलचन्दभाई! यह ध्रुव उपादेय है, यह ध्रुव उपादेय - ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : आप रोज कहते हो ध्रुव उपादेय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु ध्रुव उपादेय कहते हैं किस अपेक्षा से? समझ में आया? ए.. भगवानजीभाई! गजब बात भाई!

इसके ज्ञान में ध्रुवस्वरूप का अनुभव हो, शुद्धता का भाव वेदन में आवे, उसको ध्रुव उपादेय है। लालचन्दजी! उपादेय क्या सबको लेना?

मुमुक्षु : अनुभव करना, परिणमन करना...

पूज्य गुरुदेवश्री : परिणमन करना।

मुमुक्षु : परिणमन करने पर उपादेय है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, तब उपादेय है। पहले छठवीं गाथा में कहा, उसी बात का स्पष्टीकरण लिया है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने छठी गाथा में लिया है कि शुद्ध किसे कहें ? द्रव्य तो शुद्ध है, परन्तु किसे शुद्ध है ? कि जो द्रव्य-सन्मुख होकर, परसन्मुखता से लक्ष्य हटाकर ध्रुव का सेवन करते हैं, एकाग्रता से (सेवन करते हैं) उसको वह शुद्ध कहने में आता है।

मुमुक्षु : परसन्मुख से विमुख होकर ?

पूज्य गुरुदेवश्री : होकर, लक्ष्य छोड़कर है न पाठ में ? छठी गाथा में ? समझ में आया ? छठवीं गाथा में है या नहीं ? समयसार है ? यह तो गुजराती है, देखो ! छठी गाथा है न ? हिन्दी है, हिन्दी लाओ, देखो हिन्दी, छठी (गाथा की टीका) देखो ! ***वही समस्त अन्य द्रव्यों के भावों से भिन्नरूप से उपासित होता हुआ..*** वही आत्मा समस्त अन्य द्रव्यों के भावों से **भिन्नरूप से उपासित किया हुआ वह शुद्ध कहलाता है।** समझ में आया ? क्या कहा ? भगवान चिदानन्द प्रमत्त-अप्रमत्त की पर्यायरहित चीज़, प्रमत्त अर्थात् दोष और अप्रमत्त अर्थात् निर्दोष पर्याय, दोनों पर्यायों से रहित भगवान आत्मा है। समझ में आया ? कोई पर्याय उसमें है नहीं। ऐसे ज्ञायकभाव को शुद्ध कहने में आता है। किसको ? बोलता हो जाये ऐसा नहीं-ऐसा कहते हैं। आहाहा ! ऐ... चिमनभाई ! तुम्हारे मुम्बई में बहुत चलता है। इतने हों और इतने न हों। भाई ! विवाद नहीं होता। पहले सुन तो सही। समझ में आया ? कहते हैं कि शुद्ध किसे कहते हैं ? प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं, वही आत्मा समस्त अन्य द्रव्य के भावों से.. अन्य द्रव्य के भाव, हों ! अन्य द्रव्य का लक्ष्य छूटा, उसका-विकार का-विकल्प का भी लक्ष्य छूट गया। ऐसी जहाँ अन्दर में दृष्टि पड़ती है तो पर का लक्ष्य छूटा तो ऐसा विकल्प का लक्ष्य छूटा, त्रिकाली जो शुद्ध भगवान आत्मा है, उसकी एकाग्रता हुई, सेवन किया, तब सेवन किया, उसको द्रव्य शुद्ध है - ऐसा कहने में आता है। उसको योग्यता है। दूसरा शुद्ध कहे ऐसे नहीं, यहाँ तो ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : बराबर, उपासित करते हैं न !

पूज्य गुरुदेवश्री : उपासित, ए... भीखाभाई! क्या कहते हैं? कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं कहते हैं, यहाँ योगीन्द्रदेव स्वयं कहते हैं।

इसकी टीका-सिद्धसमान यह अपना शुद्धात्मा वीतराग निर्विकल्प समाधि में लीन पुरुषों को उपादेय है। तब उपादेय कहने में आता है। आहाहा! गजब बात भगवान!

मुमुक्षु : इसके अतिरिक्त उपादेय कैसे होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : उपादेय, उपादेय परन्तु यह उपादेय जाना अर्थात् क्या? परन्तु इसका अर्थ क्या? (स्वभाव उपादेय) समझ में आया? द्रव्यस्वभाव पर एकाग्र हुआ, तब उपादेय कहने में आता है, तब राग हेय है - ऐसा ज्ञान करने में आता है। आहाहा!

परमात्मप्रकाश में प्रत्येक गाथा में ऐसा लेते हैं। ऐसे धारणा कर ले और बात करे - ऐसा नहीं, भाई! बात ऐसी है। समझ में आया?

मुमुक्षु : अन्तःलीन....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, देखो, संस्कृत है, हों! **अत्र वीतराग निर्विकल्प समाधिरतो मुक्त जीवः सदृशः स्वशुद्धात्मा उपादेय इति भावार्थ।** उसको शुद्ध कहने में आता है, उसको उपादेय कहने में आता है। आदरणीय हुआ-उपादेय हुआ तो पर्याय द्रव्य में (घूमकर) निर्मल हुई, यह उसको उपादेय कहने में आता है। ऐ..ई.. पण्डितजी! समझ में आया?

मुमुक्षु : पहले वहाँ कहते थे और अभी तो अलग कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें यही कहना था, परन्तु यह स्पष्ट कर दिया।

शुद्धनिश्चयनय से बन्ध-मोक्षरहित है उसका अर्थ क्या?

मुमुक्षु : अशुद्धनिश्चयनय से है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अशुद्धनिश्चयनय है पर्याय में परन्तु शुद्धस्वभाव का प्रयत्न करके निर्मल पर्याय प्रगट की, उसे शुद्धनिश्चयनय से द्रव्य में बन्ध-मोक्ष नहीं, इसको ऐसा निर्णय सच्चा होता है। समझ में आया? वीतरागमार्ग ऐसा है। क्या कहा, देखो! योगीन्द्रदेव ने भी कहा है कि **हे योगी! परमार्थ से जीव, उपजता भी नहीं है,..** इस उत्पाद से पर्याय में जीव आता ही नहीं - ऐसा कहते हैं। शब्द पड़ा है न? **जीवो,** है, शब्द है या नहीं? ऐ.. सेठ? क्या है पढ़ो?

मुमुक्षु : परमार्थ से जीव उपजता भी नहीं है, मरता भी नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा शब्द पढ़ते होंगे तुम्हारी बहियाँ पढ़े तब – दिल्ली में बहियाँ पढ़े तो ऐसा पढ़ते होंगे ?

मुमुक्षु : परमार्थ से जीव उपजता भी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परमार्थ से जीव, जीव, जीव बस इतना ! परमार्थ से जीव उत्पन्न नहीं होता (अर्थात्) पर्याय में नहीं आता। आहाहा ! सेठ ! बहुत घोंटन किया है और बहियाँ पढ़े तब शीघ्रता लेता है इतना लेना है और इतना लेना। वह कहीं ऐसे पढ़ने से परमार्थ, पहले परमार्थ में शब्द ठीक नहीं आया था।

परमार्थ से.. अर्थात् वास्तव में **जीव,..** भगवान जीव का शुद्धस्वरूप जो ध्रुव है **वह उपजता भी नहीं...** पर्याय में आता भी नहीं। आहाहा ! परन्तु किसको ? भाई ! दृष्टि गयी और द्रव्य का भान हुआ, वह द्रव्य उपजता नहीं, पर्याय में आता नहीं, उसको कहने का अधिकार है। आहाहा ! बात ऐसी है भगवान ! है ?

मुमुक्षु : पर्याय की बात – द्रव्य का तो भान हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं, यहाँ तो इस भान से इन्कार करते हैं। ऐ..ई.. अमुलखचन्दजी ! ख्याल में शास्त्र से सुना और ख्याल में आया वह ख्याल ही सच्चा नहीं, आहाहा ! वह तो रागवाला ज्ञान है, परावलम्बी–परसत्तावलम्बी ज्ञान है। आहाहा ! गजब बात है ! दिगम्बर सन्त, नग्न, वे तो नागा बादशाह से आगा ये वस्तु है। समझ में आया ?

कहते हैं परमार्थ से जीव, जीव पर्याय में उपजता नहीं, उत्पाद में आता नहीं – ऐसा कहते हैं। आहाहा ! ध्रुव, उत्पाद में आवे तो एक समय की पर्याय तो नाश होती है तो ध्रुव भी नाश हो जायेगा। पहले इसमें आ गया है। समझ में आया ? सामने पन्ना है, ख्याल तो आयेगा कि यह कहने में आता है। कहते हैं कि **उपजता भी नहीं...** 'भी' क्यों कहा कि मरता भी नहीं इसलिए। अकेला उपजता भी नहीं और व्यय भी नहीं होता। समझ में आया ? ध्रुव चीज़ भगवान आत्मा वह जीव, निश्चयनय का वह जीव, द्रव्यार्थिकनय का विषय द्रव्य, वह (निश्चय) जीव; पर्याय का विषय, वह व्यवहार जीव। आहाहा !

मुमुक्षु : व्यवहार जीव तो हेय है, उसका क्या काम है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यही तो कहते परन्तु ध्रुव पर दृष्टि पड़े तो हेय हुआ।

मुमुक्षु : परन्तु हमारे हेय का काम क्या है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन कहते हैं हेय का ? अन्दर उपादेय हुआ तो हेय हो गया (अर्थात्) ध्रुव उपादेय हुआ तो यह राग उसमें नहीं आया तो हेय हो गया, उसमें हेय करना-फरना कहाँ है ?

मुमुक्षु : परन्तु हेय किये बिना उपादेय कैसे होगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन हेय करे ? ग्रहण किये बिना हेय होता ही नहीं।

मुमुक्षु : ग्रहणपूर्वक का त्याग।

पूज्य गुरुदेवश्री : ग्रहणपूर्वक का त्याग, वह सबेरे आया था। समझ में आया ? वाह भगवान ! वस्तुस्वरूप ऐसा है। पर्याय और द्रव्य दोनों की बात है भाई ! पर्याय भी है, परन्तु पर्याय है, उसमें द्रव्य आता नहीं। किसको ऐसी प्रतीति हुई ? कि जिसे द्रव्य पर दृष्टि-शुद्धनय की दृष्टि हुई, वह कहता है कि मेरा द्रव्य, वह पर्याय में तो आता नहीं; मैं पर्याय में आता नहीं और मैं पर्याय में विनशता ही नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! ऐ.. राजकुमारजी ! कभी सुना ही नहीं होगा वहाँ इतने वर्ष में। (रुपये) पैदा करने में से निवृत्त हो, तब पूजा-भक्ति करना, हो गया जाओ ! आता है न ? आये है न ? कहते थे, फिर से आना पड़ेगा। फिर से क्लास में आऊँगा। एक बार सुने, सुने तो कुछ रस लगे (कि) कुछ है तो सही कुछ चीज़। समझ में आया ? हमारा मनसुख इसे बहुत कहा करता है परन्तु ऐसे यह एकदम माने ! आया तो और आया तो है।

यह बात ही दूसरी है। भगवान आत्मा.. कहते हैं हे योगी ! योगी कहा न, उसको कहा। आहाहा !

मुमुक्षु : जो देख आया उसे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, जिसकी दृष्टि और ज्ञान की पर्याय द्रव्य में पड़ी है, पसर गयी है। समझ में आया ? उसको कहते हैं, हे योगी ! यह तेरा जीव-ध्रुवपना, वह तो पर्याय में आता नहीं। आहाहा ! जो तेरी पर्याय द्रव्य में पसर गयी है, परन्तु उस पर्याय में द्रव्य आता

नहीं, भगवान तो वहीं का वहीं रहता है – ऐसा कहते हैं। समझ में आया? निहालभाई कहते थे एक बात 'पर्याय मेरा ध्यान करे तो करे, हम किसका ध्यान करें' अरे! करने का रहा, अभी किये बिना?

मुमुक्षु : ऐसा ही लोग कहते हैं, अब हमारे कुछ करना नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाषा करे, उसमें क्या काम आवे?

मुमुक्षु : हमें क्या करना है, जिसे काम करना हो वह करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अज्ञान करे वह। अज्ञान करता है। यह तो अन्तर वस्तु की दृष्टि करने के पश्चात् दृष्टि में ऐसा (कि) पर्याय मेरा ध्यान करे तो करो, हम तो द्रव्य में बैठ गये हैं।

मुमुक्षु : ध्यान हो गया – द्रव्य में बैठ गये तो ध्यान हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर से सब लोग आये हैं न, इसलिए जरा स्पष्टीकरण करना चाहिए।

मुमुक्षु : परन्तु बहुत गड़बड़ होने के पश्चात् स्पष्टीकरण हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब यह गड़बड़ कुछ है नहीं, ऐसा थोड़ा चला करे। समाधान के लिये है न यह सब।

कहते हैं शुद्धनिश्चयनयकर नहीं है, उसका अर्थ क्या? कि शुद्धनिश्चयनय का विषय जो है, ऐसा विषय दृष्टि में लिया है, उसको बन्ध और मोक्ष, द्रव्य में नहीं है – ऐसा कहते हैं। ऐसा–शुद्धनिश्चयनय से ऐसा और व्यवहारनय से ऐसा, उसका अर्थ क्या? शुद्धनिश्चय ज्ञान की पर्याय ने त्रिकाली ध्रुव को लक्ष्य करके शुद्धनिश्चय का भान किया है। समझ में आया? आहाहा! सूक्ष्म बात है। शोभालालजी!

यह कहते हैं कि हमारा द्रव्य तो पर्याय में आता नहीं।

पर्याय हमारा ध्यान करे, आओ तो आओ। आहाहा! जाने पर्याय किसकी है! पर्याय व्यवहार की।

मुमुक्षु : पर्याय तो पर्याय की।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! क्या शब्द लिया है? परमार्थ से जीव-परमार्थ से जीव, जीव, पर्याय में आता नहीं - ऐसा कहते हैं, तो ऐसा कहते हैं देखो! शब्द क्या है? परमार्थ से-वास्तव में जो जीव है, वह जीव पर्याय में आता नहीं। आहाहा! समझ में आया? वह जीव, पर्याय में व्यय होता नहीं। उसको बन्ध की पर्याय व्यय हो, वह ध्रुव में नहीं। आहाहा! देखो न, सवेरे आया था-आत्मा, राग के नाश का कर्ता नहीं। कर्ता कहाँ है? द्रव्य में कहाँ है? आहाहा! राग के नाश का करनेवाला जीव नहीं। कौन करे नाश? समझ में आया?

भगवान आत्मा वस्तु जो है, वह तो राग के नाश का करना उसमें है ही नहीं। राग की उत्पत्ति करना नहीं और मोक्ष की उत्पत्ति करना, वह द्रव्य में नहीं - ऐसे द्रव्य की जब दृष्टि हुई, तब वह मेरा द्रव्य, पर्याय में आता नहीं; मैं पर्याय को जाननेवाला हूँ। पर्याय में आता नहीं हूँ, यह निर्णय तो पर्याय ने किया है। ऐ...ई! समझ में आया? मैं पर्याय में आता नहीं परन्तु यह निर्णय किसमें हुआ? पर्याय में हुआ या ध्रुव में हुआ।

मुमुक्षु : पर्याय में।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में निर्णय हुआ। ध्रुव तो ध्रुव है। पर्याय, ध्रुव में एकाकार हुई, मैं ध्रुव हूँ। वह पर्याय में आता नहीं, पर्याय में उपजता नहीं। निश्चय, वह व्यवहार में आता ही नहीं। आहाहा! अभी तो लोग कहते हैं व्यवहार से निश्चय होता है। यह बात तो कहीं रह गयी।

व्यवहार से निश्चय होता है (-ऐसा अज्ञानी कहते हैं) अरे भगवान! यह तो कथन की शैली ऐसी है। व्यवहार कारण है न, हेतु है न, साधन है न! सब है...

मुमुक्षु : वह तो आपने उड़ाया व्यवहार।

पूज्य गुरुदेवश्री : उड़ाया नहीं, उसमें है नहीं, वह उड़ गया। इसलिये उड़ गया - ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! जरा बात ठीक निकल गयी है।

मुमुक्षु : बहुत स्पष्ट, अच्छा स्पष्टीकरण।

पूज्य गुरुदेवश्री : लो, हमारे आत्माराम...

मुमुक्षु : किसको कहना ध्रुवस्वभाव का उपादेय, यह स्पष्टीकरण बहुत सुन्दर।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाई! तेरा द्रव्य है.. है.. है.. ऐसी प्रतीति आयी है या नहीं? सम्यक् हुआ है या नहीं?

मुमुक्षु : आपने कहा फिर प्रतीति आवे ही न।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐ, ठीक वकालात...

मुमुक्षु : नहीं तो पर्यायबुद्धि हो जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बुद्धि भी किसको?

मुमुक्षु : अज्ञानी को।

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञानी तो पर्यायबुद्धि में है ही। जब ज्ञानी हुआ तो द्रव्यबुद्धि हुई है, यह भान हुआ है, वह पर्यायबुद्धि छूट गयी है। समझ में आया?

मुमुक्षु : आज का व्याख्यान तो जल्दी छपाना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच्ची है, भाई कहते हैं। यह ठीक कहते हैं। ए..ई! हरिभाई लिखते नहीं होंगे न, हरिभाई! वापस ऐसा हो तो लिखना चाहिए। इसमें घर का शब्द नहीं आना चाहिए, हों! यहाँ आवे इतना आवे तो बराबर ठीक पड़े। समझ में आया?

परमार्थ से जीव 'जीवों' शब्द पड़ा है न। देखो! जीवो ***'ण वि उपज्जइ ण वि मरइ'*** जीव न मरता है और उपजता भी कहाँ है जीव? वह तो ध्रुव जीव त्रिकाल नित्यानन्द भगवान, वह पर्याय में आता नहीं और पर्याय का व्यय होता है उसमें नहीं—मरता भी नहीं। **बन्ध-मोक्ष नहीं करता...** भगवान ध्रुवस्वरूप। आहाहा! दिगम्बर सन्तों की शैली सनातन धारा है। आहाहा! ऐसी बात अन्यत्र कहीं नहीं मिलती। समझ में आया?

कहते हैं कि भाई! तेरा काम तूने किया? काम किया तो तेरा द्रव्य, पर्याय में उपजता नहीं – ऐसा तुझे निर्णय हो गया। आहाहा! और मेरा द्रव्य, पर्याय में भान हुआ, पर्याय में निर्णय हो गया, यह द्रव्य है, तो ऐसा द्रव्य पर्याय में आकर बन्ध को ही करता नहीं और मोक्ष को ही करता नहीं। **ऐसा श्री जिनवर कहते हैं।** पाठ में है या नहीं? **जिणवर एउ भणेइ** परमात्मा की वाणी में ऐसा आया है। आहाहा!

मुमुक्षु : परमात्मा की वाणी में ऐसा आया, अनुभवियों के अनुभव में भी ऐसा आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : परमार्थ से जीव... परमार्थ से जीव। और नहीं तो व्यवहार से जीव होता है ? परन्तु पर्याय, वह व्यवहार है। पर्याय, वह व्यवहार है। सिद्धपर्याय, वह व्यवहार; केवलज्ञान, व्यवहार; क्षायिकसमकित, व्यवहार; क्षायिकचारित्र, व्यवहार; यथाख्यातचारित्र पर्याय, व्यवहार। पर्याय, व्यवहार और द्रव्य, निश्चय, क्योंकि निश्चय का निर्णय हुआ तो पर्याय बाहर रह गयी। आहाहा! निर्णय पर्याय ने किया परन्तु वह पर्याय बाहर रह गयी। द्रव्य में प्रविष्ट नहीं हुई। लक्ष्य बदला, इसलिए द्रव्य में प्रविष्ट, ऐसा-अभेद हुई - ऐसा कहने में आता है। जो लक्ष्य पर के ऊपर था - राग के ऊपर, पर्याय के ऊपर— वह लक्ष्य द्रव्य पर हुआ तो वह पर्याय छूट गयी अथवा उस पर्याय में निर्णय हुआ कि इस पर्याय में आत्मा आता नहीं। ध्रुव कैसे आवे ? समझ में आया ? महासागर साहेब चैतन्यप्रभु, उसके साहेब का साहेब दुनिया में कोई है नहीं अब। आहाहा! समझ में आया ? उसकी पर्याय भी साहेब नहीं। आहाहा! निर्मल, निर्विकारी पर्याय या निर्विकारी दशा में जो आत्मद्रव्य का निर्णय हुआ तो कहते हैं कि निर्णय पर्याय ने किया परन्तु पर्याय ऐसा मानती है कि द्रव्य मेरे अंश में नहीं आता। और वह द्रव्य बन्ध-मोक्ष को नहीं करता। समझ में आया ? **ऐसा श्री जिनवर कहते हैं।** परमात्मा त्रिलोकनाथ ऐसा कहते हैं।

फिर वह स्पष्ट किया जाता है..

मुमुक्षु : अब पर्याय आयी।

अब पर्याय। आहाहा! **विवक्षित-एकदेशशुद्धनयाश्रित यह भावना..** भावना कहा था न, वह ध्यान कहो, भावना कहो, मोक्षमार्ग कहो, जो कहने में आता है वह, **विवक्षित** अर्थात् कहने में आता है वह। एकदेशशुद्धनय भावना एकदेशशुद्धनय है, एक अंशरूप शुद्धनय है; त्रिकाली शुद्धनय तो ध्रुव है। यह नय कहो या नय का विषय कहो, दोनों यहाँ तो एक ही है। देखो! एकदेशशुद्धनयाश्रित क्या कहते हैं ? भाव। जो निर्मल भाव है, वस्तु का जो अनुभव होकर निर्मल वीतरागी पर्याय प्रगट हुई, वह एक भाग शुद्धनय के आश्रय से, वह भावना। **(जिसे कहना चाहते हैं, ऐसी आंशिक शुद्धिरूप यह परिणति)...** आंशिक शुद्धरूपी परिणति। आंशिक शुद्धरूपी दशा जो मोक्ष का मार्ग है, जो ध्यानरूप दशा, भावनारूप पर्याय, सब एक ही नाम है, वह अपने पैंसठ बोल पहले आ गये हैं,

द्रव्यसंग्रह में (आ गये हैं)। कहने में आता है ऐसा एकदेशशुद्धनयाश्रित यह भावना, जिसे कहना चाहते हैं – ऐसी आंशिक परिणति **निर्विकार-स्वसंवेदनलक्षण..** जो पहले यह शुद्धपरिणति धर्म की उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक में गिनने में आती थी, वह सामान्य था। अब इन तीनों में ज्ञानपर्याय का परिणमन है, ज्ञान की प्रधानता से कथन है। समझ में आया? इसमें उपशम और क्षायिक नहीं लिया। ज्ञान में उपशम नहीं होता, ज्ञान में क्षायिक नीचे नहीं होता। क्या कहते हैं? कि निश्चयमोक्षमार्ग की पर्याय में ज्ञान है... समझ में आया? ज्ञान है, वह ज्ञान एकदेश शुद्ध है, वह क्षयोपशमज्ञान है। समझ में आया? ज्ञान में उपशम नहीं आता, ज्ञान में नीचे क्षायिक नहीं। साधारण बात। तीनों मोक्षमार्ग कहा, तब तो उपशम, क्षयोपशम क्षायिक करके तीनों भाव मोक्ष का कारण है – ऐसा कह दिया। परन्तु अब ज्ञान की बात करके उसको (ध्रुव को) ज्ञेय बनाया, ऐसा जो ज्ञान, निर्विकार स्वसंवेदनलक्षण-विकाररहित अपना 'स्व' अर्थात् अपने से 'सम्' अर्थात् प्रत्यक्ष वेदन अर्थात् अनुभव लक्षण। ऐसा **क्षायोपशमिकज्ञानरूप होने से,..** वह शुद्धपरिणति क्षयोपशम -ज्ञानरूप है। जिसको उपशम-क्षयोपशम और क्षायिक ऐसा भाव था, वह तो दर्शन-ज्ञान और चारित्र तीनों बोल लेकर कहा था। अब तीनों में श्रुतज्ञान की वेदनदशा हुई, वह शुद्धज्ञान की परिणति है, वह क्षयोपशमज्ञान है, ज्ञान में उपशम नहीं होता, साधक को ज्ञान में क्षायिक नहीं होता। आहाहा! उपशम है नहीं। वहाँ कहाँ उपशम होता? ज्ञान का उपशम हो तो केवलज्ञान हो जाये – ऐसा अर्थ कहा। ज्ञान में उपशम होता नहीं, ज्ञान में क्षायिक यहाँ -नीचे (निचली दशा में) है नहीं। यहाँ तो साधक की बात है, देखो! क्या? आंशिक शुद्धिरूपी परिणति... पूर्ण शुद्धरूप परिणति केवलज्ञान की यहाँ बात नहीं है, मोक्षमार्ग की आंशिक शुद्धिरूपी परिणति। **निर्विकार-स्वसंवेदनलक्षण क्षायोपशमिकज्ञानरूप होने से, यद्यपि एकदेश व्यक्तिरूप है..** एक अंश प्रगटरूप है। स्वसंवेदनज्ञान, द्रव्य को लक्ष्य करके जो वेदन हुआ, वह ज्ञान एकदेश / आंशिक शुद्ध है।

तथापि ध्याता पुरुष ऐसा भाता है.. आहाहा! यह बात विस्तार से आयेगी।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)